गिरिराज गोवर्द्धन

गिरिराज गोवर्द्धन परम भक्त साक्षात् हरि के प्रिय थे। वे भगवान श्रीकृष्ण के वक्ष से समुद्भूत हुए थे। भूतल और स्वर्ग में इनके समान तीर्थ नहीं है क्योंकि ये श्रीहरि स्वरूप हैं। श्रीभगवान गोलोक में निजलोक समूहादि सृष्टि करने के पश्चात् परिपूर्णदेव परम परेश असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति श्रीकृष्ण श्रीराधा के सहित वहाँ विराजमान हुए। एक बार वहाँ रासमंडल में नुपूर के शब्द सह उज्ज्वल कान्ति प्रस्फुरित हुई। इस रास-आंगन के मध्य सुन्दर छत्राकार मुक्ताफल की माला से अमृत के बड़े-बड़े बिन्दु गिरने लगे एवं मनोज्ञ मालती लताजाल से अमृत-बिन्दु झरकर मधुगन्ध से आंगन आमोदित हो गया; इसके साथ ताल लययुक्त मृदंग व वेणु वाद्य के संग सुकंठ गीतों से वह स्थान अत्यन्त मनोहर हो उठा। तत्पश्चात् उन्हीं अपरूप सुन्दरीगणों के रासरस-मनोहर रासमंडल के मध्य कोटिकन्दर्प-मोहन कृष्ण अवस्थित हुए। तब श्रीराधा रसदान के निमित्त निजपति को उर्ज्जित वाक्य से कटाक्ष करते हुए हृदय विगलित भाव में कहने लगी- ''हे जगत्पते, यदि रास में मेरे प्रेम से आप प्रसन्न हुए तो मैं आप से मेरे आकांक्षित एक प्रार्थना कर रही हूँ।'' श्रीराधा की विनती सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा- ''हे प्रिये, तुम्हारी जो मनोवासना है वह प्रकाश करो। जो मेरे अदेय वस्तु है, प्रेम में मैं वह भी प्रदान करूँगा।'' तब श्रीराधा ने कहा - ''हे देवदेव! यमुनातट पर वृन्दावन के दिव्य निकुंज के पार्श्व स्थल पर रासरस के योग्य मनोज्ञ निर्जन स्थान निर्दिष्ट करिए, यह ही मेरा मनोरथ हैं। तब श्रीभगवान ने, ''तथास्तु'' कहकर उपयुक्त निर्जन स्थान चिन्तन का करते-करते कमल नयन द्वारा निज हृदय दर्शन किया। तब उसी क्षण गोपीगण के समक्ष श्रीकृष्ण के हृदय से मानों जैसे अनुराग के अंकुर स्वरूप तेज समूह निर्गत हुआ। यह तेज रासभूमि में पड़ने मात्र से ही पर्वताकार में परिणत होकर वर्द्धित होने लगा। मनपसन्द निर्झर युक्त गुहावृत दिव्य रत्न धातुमय वह पर्वत वसन्त ऋतु के समागम से तब कदम्ब, बकुल व अशोक लताजाल द्वारा मनोहर, मन्दार व कुंदवृन्द से समृद्ध एवं अपूर्व विहंगमगण द्वारा समाकुल हो गया। क्षणकाल में ही वह पर्वत लक्षयोजन विस्तृत, शेषनाग की तरह शतकोटि योजन दीर्घ, ऊर्ध्व में पंचास कोटि योजन विस्तृत होकर विराट् गजराज की तरह अवस्थान करने लगा। इसके बाद कोटि योजन सुदीर्घांग उसके शत-शत शृंग स्फुरित होकर उन्नत स्वर्ण कुम्भ-शोभित प्रासाद की तरह प्रतिभात होने लगे। इसी पर्वत को गोवर्द्धन कहा जाता है। ''गो'' अर्थ से विश्व, ''वर्द्धन'' अर्थ से वर्द्धित होना समझा जाता है। श्रीकृष्ण के हृदय से समुद्भूत होने के कारण ये अनन्त को प्राप्त हुए। गिरिराज प्रकटित होकर विश्व की तरह विराट् परिधि में वर्द्धित होने लगा, इसीलिए उसने ''गोवर्द्धन'' नामरूप धारण किया। किसी-किसी ने इसको ''शतशृंग'' भी कहा है। इस रूप में वर्द्धित होकर गोवर्द्धन मन के उत्साह से और भी अधिक वर्द्धित होने लगे। तब भयविह्वल गोलोक में एक महाकोलाहल उत्थित हुआ। अनन्तर तत्दर्शन से स्वयं हरि ने अपने हस्त द्वारा उनको शीघ्र अनुशासित करके परिमित किया एवं उनसे कहा- ''सुनो हे गोवर्द्धन! क्यों ऐसे रूप में भीषण भाव धारण कर वर्द्धित होकर लोक समूहादि को आच्छादित करते हुए अवस्थान कर रहे हो? क्या ये सारे लोग यहाँ निवास नहीं करेंगे?'' - तब श्रीभगवान कृष्ण ने ऐसा कहकर उसका शांति विधान किया। भगवत् प्रिया राधा तब गोवर्द्धन के दर्शन से अति सुप्रसन्न होकर उस निर्जन स्थल पर श्रीकृष्ण के सहित विराजती रही।

सर्वतीर्थमय घनश्याम श्यिाम सुन्दर-देह इस गिरिवर गोवर्द्धन पर साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण कर्तृक प्रणोदित हुए हैं।

गिरिराज गोवर्द्धन ने भारतभूमि के पश्चिम प्रदेश में शाल्मलीद्वीप के मध्य द्रोण पर्वत का पुत्र होकर जन्मग्रहण किया था। ब्रह्मर्षि पुलस्त्य ने उनको भारत के व्रजमंडल में आनयन किया। ये द्रोणात्मज पूर्व में जिस प्रकार में सोत्साह वर्द्धित होने में उत्सुक थे इससे पृथ्वी के प्रायः तिरोहित होने का उपक्रम हो जाता, इस कारण श्रीकृष्ण ने यह विषय चिन्तन कर महर्षि अगस्त्य द्वारा इनके क्षय के लिए अभिशाप प्रदान करवाया था। *(गर्गसंहिता से संग्रहित)*

हिन्दी अनुवादः मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख